उपसंहार

उपसंहार

हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम, अफगान, सिख और अंत में डोगरा शासन के अधीन रहे कश्मीर ने बहुत कुछ भोगा है। जैसा कि निदा नवाज़ अपनी डायरी 'सिसकियां लेता स्वर्ग' में लिखते हैं, 'यहाँ हर व्यक्ति के पास लाखों अलिखित और अनकही कहानियाँ हैं जो कहीं सिसकियों में अँकुरित हो रही हैं तो कहीं एक चुप्पी बनकर पूरी कश्मीर घाटी पर छाई हुई हैं।' कश्मीर केन्द्रित हिंदी उपन्यास कश्मीर के इसी सच को बयां करते हैं जो उसको ले कर की जानेवाली राजनीति के नीचे कहीं दब गए हैं। भारत में कश्मीर के विलय की घटना, कश्मीर को लेकर हुए भारत-पाकिस्तान युद्ध, केंद्र-प्रदेश के बीच पनपते तनाव और उससे बिगड़ते राजनीतिक परिदृश्य, कश्मीर में निरंतर बढ़ती हिंसक और आतंकी गतिविधियों ने इस प्रदेश को विश्व के अशांत प्रदेशों में से एक बना दिया, जिसने सबसे अधिक प्रभावित कश्मीर के जन-जीवन को किया है। कश्मीर केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में इन्हीं घटनाओं और बिगड़ती परिस्थितियों को केंद्र में रखकर कश्मीरी जीवन, उस जीवन की जटिलताएं , उसके संघर्ष, उसकी अस्मिता का चित्रण हुआ है। वस्तुत: 'खुबसूरत वादियों के बीच बदसूरत होते कश्मीर' को अतीत, वर्तमान और भविष्य के परिप्रेक्ष में प्रस्तुत किया गया है।

इन उपन्यासों में कश्मीरियों की समस्याओं के साथ ही उनके उन संबंधों का भी चित्रण है जो धार्मिक भेदभाव से परे थे, जिनके केंद्र में धर्म नहीं मनुष्यता थी। ऐसा नहीं था कि कश्मीरी-समाज में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था, लेकिन धार्मिक भेदभाव के बावजूद कश्मीरियों के सहजीवन और सहअस्तित्व की सदियों पुरानी परंपरा है। वस्तुत: अलग-अलग धार्मिक पहचान के अलावा भी कश्मीरियों की एक साझी पहचान थी जो उनकी कश्मीरी होने की पहचान थी। इस पहचान ने उन्हें सांस्कृतिक रूप से जोड़े रखा था। इस पहचान को ही हिंसा और आतंकवाद ने सबसे अधिक प्रभावित किया है, जिसका चित्रण उपन्यासों में पूरी संवेदनशीलता के साथ किया

गया है। उपन्यासों में चित्रित है कि कश्मीर में बढ़ती हिंसा सभी कश्मीरियों, चाहे वह किसी भी धर्म के हों, की सामान्य जीवन जीने की उस इच्छा पर एक आघात है जो कि उनका मूलभूत अधिकार है। कश्मीरी-आतंकवाद के शिकार केवल वहाँ के हिन्दू ही नहीं बल्कि मुसलमान भी हैं। उनकी स्थिति सेना और दहशतगर्दों के बीच दो पाटों में पीसते घुन-सी है। वे चाहकर भी सामान्य जीवन नहीं जी सकते हैं और न ही सेना या दहशतगर्दों में से किसी एक का साथ देकर सुरक्षित रह सकते हैं। उपन्यासों में कश्मीरी-अस्मिता संबंधी इन ज्वलंत प्रश्नों को उठाया गया है जिससे कश्मीरी पंडित और मुसलमान दोनों जूझ रहे हैं। कश्मीरी पंडित जहाँ विस्थापित होने के बाद अपनी पहचान और अस्मिता को बचाए रखने लिए संघर्षरत हैं तो कश्मीरी मुसलमान स्वयं पर होनेवाले संदेह से आहत। कैम्प में रहने वाले कश्मीरी पंडित दया के पात्र समझे गए तो वहीं कश्मीरी मुसलमानों संदेह की दृष्टि से देखे जाने लगें। उनकी पहचान सिर्फ कश्मीरी नहीं रह गई बल्कि उनके साथ विस्थापित, आतंकी, मुखबिर अथवा जासूस जैसी पहचान भी जुड़ गई है। स्वयं को दया या संदेह की दृष्टि से देखे जानेवाले अपमान को कश्मीरियों ने झेला है, झेल रहे हैं। यह स्थिति स्वतंत्र भारत के नागरिक के रूप में उनके आत्मसम्मान पर प्रहार है, जिसका प्रभाव केवल उनके जीवन पर ही नहीं उनके आपसी संबंधों पर भी पड़ा। अस्मिता संबंधी मुद्दों को उपन्यासों में इसलिए उठाया गया है ताकि कश्मीर मुद्दे पर चर्चा के दौरान कश्मीरियों के अस्मिता संकट को नजरअंदाज न किया जाए। इन उपन्यासों में एक ओर हड़ताल, कर्फ्यू और निरंतर हिंसा के कारण बिगड़ती पर्यटन पर आधारित आर्थिक व्यवस्था और विनष्ट शिक्षा व्यवस्था का यथार्थ चित्रण हुआ है, वहीं दूसरी और विस्थापन की प्रक्रिया, कारण और पीड़ा पर विशदता से प्रकाश डाला गया है। उपन्यास उस पुरे माहौल का चित्रण करते हैं जिसने गैर मुसलमानों को कश्मीर छोड़ने को मजबूर कर दिया था। इस विस्थापन से पूर्व भी रोजगार की तलाश अथवा बेहतर जीवन की चाह में कश्मीरी हिन्दू कश्मीर से बाहर जाने लगे थे लेकिन यह उनका चुनाव था और उनके पास लौट आने का विकल्प था, आसरा था, उनका अपना घर था। 1990 में हुए सामूहिक

विस्थापन ने उनके इस विकल्प को उनसे छीन लिया। इस विस्थापन में केवल घर नहीं छूटा, बल्कि वह विरासत छुट गई जिसे उन्हें सहेज कर रखना था और आगामी पीढ़ी को सौंपना था। उपन्यासों में केवल हिन्दुओं का नहीं बल्कि मुसलमानों के विस्थापन का चित्रण हुआ है। कश्मीरी पंडितों के समान उनके धर्म को आधार बनाकर उन्हें कश्मीर छोड़ने के लिए मजबूर नहीं किया गया था लेकिन जो मुसलमान एक सुरक्षित भविष्य चाहते थे, रोज़गार चाहते थे, सेना के पहरे एवं पूछताछ तथा दहशतगर्दों के आतंक से मुक्त जीवन चाहते थे उन्हें भी किस प्रकार कश्मीर छोड़ना पड़ा, यह भी चित्रित है।

लगभग सभी उपन्यासों में स्त्री-त्रासदी का चित्रण मिलता है। उपन्यासों में दिखाया गया है कि कश्मीरी स्त्री न कश्मीर में सुरक्षित थी और न ही वहाँ से विस्थापित होकर कैम्प में। कश्मीरी स्त्रियों का शोषण तीन स्तरों पर हुआ है। एक ओर कश्मीरी होने के नाते हर पल भय में जीने को विवश थी तो वहीं दूसरी ओर कश्मीरी स्त्रियाँ उन पितृसत्तात्मक रूढ़ियों की भी शिकार थी जहाँ उनके साथ लैंगिग आधार पर भेदभाव किया जाता था। तीसरे स्तर पर कश्मीरी स्त्री धर्म के आधार पर लगाई जानेवाली बंदिशों, बलात्कार और उसके परिणामस्वरूप होते अवैध गर्भपात की भी शिकार थी। धर्म के आधार पर शुरू की गई इस हिंसा का शिकार कश्मीरी हिन्दू स्त्रियाँ और मुसलमान दोनों स्त्रियाँ थीं। स्त्री-विरोधी मानसिकता ने स्त्री-पहचान को केवल एक वस्तु रूप दे दिया था- दिल-दिमाग से रिक्त केवल देह और इस स्तर पर उनकी पहचान हिन्दू-मुसलमान की न रहकर केवल स्त्री बन जाती है। कश्मीरी स्त्रियों का यह संकट उनकी स्वतंत्रता, शिक्षा और रोजगार पर भी था। इन स्त्रियों की परिस्थिति और पीड़ा भले अलग-अलग हो लेकिन उसका कारण एक था- उनका स्त्री होना। इनके लिए एक ओर विस्थापन का दंश था तो दूसरी ओर कश्मीर में रहते हुए यातना को सहने की पीड़ा थी। उपन्यासों में स्त्रियों के संघर्ष और विरोध को भी शामिल किया गया है। पितृसत्तात्मक साज़िश, राजनीति, सेना और आतंकवाद जैसे मुद्दों पर कश्मीरी स्त्री क्या सोचती है, क्या अनुभव करती है, किन तकलीफों को झेलती हैं और इन सबका

उस पर क्या प्रभाव पड़ता है इनका विशद चित्रण उपन्यासों में हुआ है।

उपन्यासों में यह चिंता भी व्यक्त की गई है कि क्या भविष्य में सब सामान्य हो पाएगा? वे लोग कभी अपने घरों को लौट पाएँगे जो कश्मीर से विस्थापित हुए हैं? उन लोगों का क्या होगा जो गुमशुदा हैं, जिनकी न लाश मिली है और न ही जीवित रहने की कोई उम्मीद बची है? उपन्यासों में व्यक्त यह चिंता अकारण नहीं है बल्कि इतने वर्षों बाद भी कश्मीर-समस्या का समाधान न होना इसका कारण है। लगभग सभी उपन्यासकारों का मत है कि जब तक आतंकवाद ख़त्म नहीं होगा, तब तक कश्मीर समस्या का समाधान कठिन है । 'इंटरनेशनल फंडिंग' के आधार पर पनप रहे आतंकवाद के इस आर्थिक पक्ष पर इन उपन्यासों में प्रकाश डाला गया है। एदुआर्दो गालेआनो ने लिखा है, 'हथियार बनानेवालों को जंग की जरूरत होती है, जैसे छाता बनानेवालों को बरसात की जरूरत होती है।' ये पंक्तियाँ कश्मीर-समस्या पर लागू होती हैं। उपन्यासों में कश्मीर-समस्या के कारणों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है लेकिन समाधानों पर संक्षिप्त चर्चा हुई है। संभवत: उपन्यास समाधान देने के उद्देश्य से नहीं लिखे गए हैं बल्कि जीवन की जद्दोजहद और उसे उत्पन्न करनेवाले कारण ही इनके केंद्र में है।

वस्तुत: उपन्यासों में कश्मीर केन्द्रित राजनीति, साझी सांस्कृतिक विरासत, खंडित विश्वास और उथल-पुथल होता जीवन समग्रता से चित्रित है। उपन्यास एकपक्षीय न होकर साझे दुख की व्यथा को अभिव्यक्ति देते हैं। विस्थापितों के सामने अगर पुन: बसने की जद्दोजहद है तो जो कश्मीर में रहनेवालों का जीवन भी आसान नहीं है। कश्मीर में हड़ताल, कर्फ्यू आदि के कारण आर्थिक संकट झेलता वर्ग है तो कश्मीर से बाहर अपनी अस्मिता तलाशता समुदाय भी है। सैनिक जीवन की जटिलता है तो दहशतगर्द बने व्यक्ति का पक्ष भी है। दरअसल इन उपन्यासों में कश्मीर से जुड़े सभी लोगों की पीड़ा, अंतर्द्वंद और बेबसी को कलमबद्ध किया गया है। कश्मीरियों की पीड़ा, प्रतिरोध को साहित्य में दर्ज करते ये उपन्यास एक ओर अनकही-अनसुनी पीड़ा और बेबसी की आवाज़ तो बनते ही हैं साथ ही सब ठीक हो जाने की उम्मीद भी जगाए रखते हैं क्योंकि

उपन्यासों में जहाँ हिंसा, आतंक और सांप्रदायिकता के चित्रण द्वारा स्थिति की भयावहता को दिखाया गया है वहीं मानवता के आधार पर बने संबंधों का चित्रण कर मनुष्यता के बचे-बने रहने का संकेत भी दिया गया है।

एक संवेदनशील, विवादास्पद, जटिल एवं व्यापक विषय को पूरी संवेदनशीलता, मार्मिकता और गहराई से महिला कथाकारों द्वारा चित्रित करना हिंदी उपन्यासों की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। उपन्यासों में स्त्री रचनाकारों की संख्या अधिक है। चयनित ग्यारह उपन्यासों में केवल एक उपन्यास पुरुष कथाकार द्वारा लिखा गया है। शेष कथाकार महिला हैं जो कश्मीरी और गैर कश्मीरी दोनों हैं। यह कहा जा सकता है कि इन उपन्यासों में कश्मीरी-जीवन और उसकी त्रासदी को स्त्री दृष्टि से देखा गया है। महिला उपन्यासकारों की केन्द्रीय चरित्र अधिकांश: स्त्री पात्र हैं जो उपन्यास में पुरुष पात्र की सहायक नहीं बल्कि कथानायक के रूप में उपस्थित होती हैं। वे पुरुष पात्रों की तुलना में कमज़ोर नहीं हैं बल्कि विद्रोह करती हैं और अभिव्यक्ति का साहस रखती हैं। उल्लेखनीय है कि सांप्रदायिकता, हिंसा, विस्थापन, कैंप जीवन की त्रासदी और पुनर्वास की समस्या को आधार बनाकर उपन्यास लिखने की परंपरा भारतीय साहित्य में नई नहीं है। भारत विभाजन के बाद हिंदी, बांगला, उर्दू, पंजाबी साहित्य में विभाजन की राजनीति, सांप्रदायिकता तथा हिंसा, अस्मिता का संकट, विस्थापन, शरणार्थी शिविरों की भयावहता और पुनर्वास की समस्या को लेकर अनेक उपन्यास लिखे गए हैं परंतु लगभग सभी उपन्यास पुरुष कथाकारों द्वारा लिखे गए हैं। इस संदर्भ में बहुत कम महिला कथाकारों के नाम सामने आते हैं, यथा- कुर्रतुल ऐन हैदर का उर्दू भाषा में रचित उपन्यास 'आग का दरिया', पंजाबी भाषा में रचित अमृता प्रीतम का उपन्यास 'पिंजर', बांग्ला भाषा में रचित सुनंदा सिकदार का उपन्यास 'दयामयीर कथा' तथा ज्योतिर्मयी देवी का उपन्यास

'एपार गंगा ओपार गंगा'। इनमें से भी 'पिंजर' भारत विभाजन के दौरान स्त्री की त्रासदी, 'दयामयीर कथा' रिश्तों के टूटने की कथा और 'एपार गंगा ओपार गंगा' सामजिक संकट पर

केंद्रित है। केवल 'आग का दरिया' भारतीय सांस्कृतिक-राजनैतिक इतिहास को समेट कर सांप्रदायिकता, विभाजन, विस्थापन और अस्तित्व संकट को व्यापक परिदृश्य में प्रस्तुत करने वाला वृहद उपन्यास है। हिंदी में 1990 के पहले सांप्रदायिकता, हिंसा, विस्थापन आदि को लेकर महिला उपन्यासकार द्वारा रचित उपन्यास नहीं मिलता।

इस दृष्टि से अगर विचार किया जाए तो चन्द्रकान्ता, मीरा कांत, क्षमा कौल, संजना कौल, मनीषा कुलश्रेष्ठ, मधु कांकरिया, जयश्री राय और पद्मा सचदेव ने न केवल हिंदी कथा साहित्य को समृद्ध किया है, अपितु भारतीय कथा साहित्य में एक नए अध्याय को जोड़ा है। स्त्री जीवन के दायरे से बाहर निकलकर इन महिला कथाकारों ने अपने युग, देश और प्रान्त की सबसे चर्चित, विवादित, संवेदनशील और दुखद विषय वस्तु को आधार बनाकर उपन्यासों की रचना की और मिडिया द्वारा प्रस्तुत कश्मीर और पूर्वाग्रहों द्वारा बनी कश्मीर की प्रचलित छवि से इतर वास्तविक कश्मीर को समग्रता के साथ चित्रित किया है।

यहाँ एक और बात उल्लेखनीय है कि कश्मीरी-जीवन पर उपन्यास लिखनेवाले हिंदी कथाकारों में चन्द्रकान्ता, क्षमा कौल, संजना कौल और मीरा मीरा की मातृभाषा कश्मीरी है। कश्मीरी भाषा और कश्मीरी साहित्य की अति समृद्ध परंपरा के रहते हुए इन रचनाकारों ने लेखन के लिए मातृभाषा कश्मीरी नहीं, बल्कि हिंदी को माध्यम बनाया। हिंदी के माध्यम से कश्मीरियों के सामान्य से असामान्य होते जीवन की व्यथा को हिंदी पाठकों को महसूस कराया। 1990 में कश्मीरी पंडितों के कश्मीर से निष्कासन और विस्थापन के बाद इस विषय को नजरअंदाज कर देश जो गहरी चुप्पी साधे था, उसे इन कश्मीरी भाषी रचनाकारों ने तोड़ा है और कश्मीर समस्या को एक वृहद भारतीय समाज से हिंदी के माध्यम से जोड़ा है। यह गैर हिंदी रचनाकारों की हिंदी साहित्य को अत्यंत महत्वपूर्ण देन है।